पर्यावरण के संदर्भ में जैन दृष्टिकोण

–डॉ. शेखरचन्द्र जैन, अहमदाबाद
प्रधान संपादक–''तीर्थंकरवाणी''

पिछले दशक से 'पर्यावरण', प्रदूषण शब्द अधिक प्रचलित हुआ। आज विश्व का प्रत्येक देश उसके राजनीतिज्ञ, बौद्धिक, वैज्ञानिक सभी इसकी चर्चा और चिंता व्यक्त कर रहे हैं। अच्छाई यह उभरकर आई कि यह आम चर्चा का विषय बन सका। पर, अधिकांशतः यह चिन्तन का एक फैशनेबल शब्द भी बनता जा रहा है।

प्रश्न यह उठता है कि ऐसा क्यों होने लगा। यदि हम पृथ्वी की वर्तमान स्थिति को देखें और विचार करें तो स्पष्ट होता है कि पृथ्वी का मूल परिवेश ही लोगों में अपने वैयक्तिक हित के लिए बदल डाला है। प्रकृतिक संतुलन जो वनस्पति, जीवधारी प्राणियों के कारण था उसे असंतुलित कर डाला। जिसके भयंकर विनाशकारी परिणाम सामने आये और मानव चिंतित हो उठा। अस्तित्व का खतरा बढ़ने लगा जिससे वह इस पर्यावरण की रक्षा के लिए सोचने लगा। यह प्रश्न व्यक्ति का नहीं पर समग्र विश्व और चराचर के प्राणी मात्र से जुड़ा होने के कारण सबके लिए चिन्ता और चिन्तन का कारण बना। इसीलिए आज इस प्रश्न की चर्चा, उपाय ढूँढ़े जा रहे हैं।

'पर्यावरण' शब्द को सामान्य रूप से समझेंगे इतना ही कहा जा सकता है कि पर्यावरण अर्थात् आवरण या रक्षण कवच। आज इस रक्षाकवच को तौड़ा जा रहा है अतः पूरी पृथ्वी का रक्षण डगमगाने लगा है। पृथ्वी ही ऐसा नक्षत्र है जिसमें प्राण और वनस्पति दोनों का स्थान है। प्रकृति से मनुष्य को बुद्धि का विशिष्ट वरदान मिला है ..... अतः यह अपेक्षा थी कि वह इस सृष्टि का रक्षण करेगा। पर, इस बुद्धि का दुरुपयोग करके उसने इस सृष्टि पर ही आघात किए। मनुष्येतर सभी प्राणी अपने नैसर्गिक जीवन के अलावा अन्य किसी भी विनाश या संग्रह या मौज शौक के लिए अन्य प्राणी या वनस्पति का घात नहीं करते–जबकि मनुष्य ने अपनी पेट की भूख के साथ अपनी पशुवृत्ति के पोषण एवं संग्रह के कारण अनेक प्राणी वध किए। जंगल उजाड़े और अपनी ही मौत को आमंत्रित किया। प्रगति के नाम पर हुए वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक परीक्षण व निर्माण पृथ्वी के पर्यावरण को निरंतर दूषित कर रहे हैं। इन्हीं तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में हम जैनदृष्टिकोण से पर्यावरण पर विचार करेंगे।

जिस तथ्य का स्वीकार आज वैज्ञानिक कर रहे हैं कि वनस्पति में जीव होता है उसका प्रतिपादन और निरूपण जैनागम हजारों वर्ष पूर्व कर चुका था। इतना ही नहीं जैनदर्शन ने तो स्थावर पंचास्तिकायिक जीवों में प्राणों की कल्पना की थी। कल्पना ही नहीं परीक्षण से जीव के अस्तित्व को प्रामाणित किया था। इन्हें 'स्थावरजीव' की संज्ञा प्रदान की थी। धवला में कहा है–''स्थावर जीव एक स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा ही जानता है, देखता है, खाता है, सेवन करता है और उसका स्वामीपना करता है।'' सर्वार्थसिद्धि में कहा है जिसके उदय से एकेन्द्रियों में उत्पत्ति होती है वह स्थावर नाम कर्म है। पंचास्तिकाय मूलाचार में पृथ्वीकाय अपकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय यह कायें जीव सहित हैं–ऐसा निर्देश है। इसे स्पष्ट करते हुए 'धवला' में कहा गया है कि स्थावर जीव एक स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा ही जाना जाता है, देखता है, खाता है, सेवन करता है और उसका स्वामीपना करता है इसलिए उसे एकेन्द्रिय स्थावर जीव कहा गया है।

इन एकेन्द्रिय जीवों की प्रयोगात्मक स्थिति को 'पंचास्तिकाय' आदि ग्रंथों में समझाते हुए लिखा है–''अण्डे में वृद्धि पाने वाले प्राणी गर्भ में रहे हुए प्राणी और मूर्च्छा प्राप्त मनुष्य जैसे हैं–वैसे एकेन्द्रिय जीव जानता है। यह एकेन्द्रियों को चैतन्य का अस्तित्व होने संबंधी दृष्टान्त का कथन है। अण्डे में रहे हुए प्राणी, गर्भ में रहे हुए और मूर्च्छा पाये हुए के जीवत्व का, उन्हें बुद्धि पूर्वक व्यापार नहीं देखा जाता तथापि, जिस प्रकार निश्चय किया जाता है। उसी प्रकार एकेन्द्रियों के जीवत्व का भी निश्चय किया जाता है, क्योंकि दोनों में बुद्धिपूर्वक व्यापार का अदर्शन है। ''राजवार्तिककार'' ने माना है कि वनस्पति आदि में ज्ञान का सद्भाव होता है। खान-पान आदि मिलने पर पुष्टि और न मिलने पर मलिनता देखकर उनमें चैतन्य का अनुमान होता है।

स्याद्वादमंजरी में इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है–''मूंगा पाषाणादि रूप पृथ्वी सजीव हैं क्योंकि डाभ के अंकुर की तरह पृथ्वी के काटने पर वह फिर से उग आती है। पृथ्वी का जल सजीव है, क्योंकि मैंडक की तरह जल का स्वभाव खोदी हुई पृथ्वी के समान है। आकाश का जल भी सजीव है, क्योंकि मछली की तरह बादल के विकार होने पर वह स्वतः ही उत्पन्न होता है। अग्नि भी सजीव है, क्योंकि पुरुष के अंगों की तरह आहार आदि के ग्रहण करने से उसमें वृद्धि होती है। वायु में भी जीव है, क्योंकि गौ की तरह वह दूसरे से प्रेरित होकर गमन करती है। वनस्पति में भी जीव है, क्योंकि पुरुष के अंगों की तरह छेदने से उसमें मलिनता देखी जाती है। कुछ वनस्पतियों में स्त्रियों के पदाघात आदि से विकार होता है इसलिए भी वनस्पति जीव है। अथवा जिन जीवों में चेतना घटती हुई देखी जाती है वे सब सजीव हैं। सर्वज्ञ भगवान ने पृथ्वी आदि को जीव कहा है।

इस प्रकार इस शास्त्रीय व्याख्या और लक्षण से यह सिद्ध हो गया कि पृथ्वी आदि पाँचों प्रकार के स्थावर जीव एकेन्द्रिय हैं और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव हैं। यद्यपि वे पंचेन्द्रिय संज्ञी मनुष्य की तरह अभिव्यक्त नहीं कर सकते पर उनमें सुखात्मक-दुखात्मक अनुभूति होती है यह शास्त्रों में कहा गया है और वर्तमान विज्ञान ने भी प्रयोगों से इस तथ्य को सत्य पाकर उसका स्वीकार किया है। वनस्पति पर ऐसे प्रयोग हुए हैं कि यदि दो पौधे अलग-अलग अच्छी और दुष्ट प्रकृति के मनुष्य में लगाये हों तो उनकी वृद्धि में फर्क देखा गया। इसी प्रकार यदि एक पौधे को प्यार से और दूसरे को तिरस्कार से सींचा गया तो उनकी वृद्धि में भी पर्याप्त अंतर देखा गया। और यह भी निरीक्षण से सिद्ध हुआ है कि एक पौधे को सुन्दर संगीत सुनाया गया तो उसकी वृद्धि अकल्पित ढंग से हुई। इन सब प्रयोगों से इन एकेन्द्रिय स्थावर में जीव की पुष्टि होती है। उनके सुख-दुख की अनुभूति का परिचय मिलता है।

जैनदर्शन का महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है "जिओ और जीने की सुविधा प्रदान करो।" इसी सिद्धान्त का उमास्वामी ने 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' द्वारा प्रतिपादन किया। दोनों सिद्धांत और सूत्र प्रत्येक प्राणी के प्रति सहिष्णुता एवं सहयोग के प्रतीक हैं। थोड़ा विचार करें कि जिस प्रकार हमें अपना जीव प्यारा है। थोड़ा-सा कष्ट भी हमें व्याकुल कर देता है। यत्किंचित भी अन्य द्वारा दी जाने वाली शारीरिक या मानसिक पीड़ा हमें प्रतिशोध से भर देती है–फिर हम यह महसूस क्यों नहीं करते कि अन्य सभी एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जीवों को भी ऐसी ही संवेदना होती होगी। जैसे हम सुख से जीना चाहते हैं वैसे ही प्रत्येक प्राणी भी अपने ढंग से जीना चाहता है। फर्क इतना है कि हमने अपनी बुद्धि-विकास-चतुराई या बुद्धि के विकार से अपना जीना ही महत्त्वपूर्ण माना। अपनी सुख सुविधा के लिए दूसरों का घात किया, कष्ट दिया और उनका विनाश किया। अन्य प्राणी ऐसा नहीं कर सके। उनकी असहाय स्थिति को समझ कर उनके मौन दर्द को जान कर यदि हममें यह संवेदना जाग जाये तो निश्चित रूप से हम अनुभव करेंगे कि जैसी सुखात्मक-दुखात्मक अनुभूति हमारे अंदर घटित होती है–वैसी ही प्रत्येक प्राणी में घटित होती है। यदि हमारे पास बुद्धि और शक्ति है तो हमें उन सभी प्राणियों को जीने की सुविधा प्रदान करनी होगी जो उनका भी जन्मसिद्ध अधिकार है। इसके लिए दया-करुणा-क्षमा और ममता के भावों का विकास करना होगा। ये भाव जैन सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में देखें तो अहिंसा के गुण से ही उत्पन्न होते हैं और पनपते हैं। 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' के मूल में इसी अहिंसा के सिद्धान्त की मुख्यता है। जैनदर्शन की नींव या रीढ़ यह अहिंसा है। हिंसा की भावना कभी परस्पर उपकार की भावना को दृढ़ीभूत नहीं कर सकती। यद्यपि सभी धर्मों ने अहिंसा की महत्ता का स्वीकार किया–पर जैनधर्म ने उसे मूलतत्त्व या आधार के रूप में स्वीकार किया। यहाँ चूँकि हम पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में बात कर रहे हैं अतः द्रव्य हिंसा की ही विशेष चर्चा करेंगे।

मूलतः मानव शाकहारी प्राणी है। उसके शरीर, दाँत आदि की संरचना भी तदनुकूल है। कुदरत ने प्रत्येक जीव का भोजन निश्चित किया है। कुदरत के संतुलन हेतु प्रत्येक प्राणी का आहार-बिहार-रूप-रंग आदि निश्चित हैं। मनुष्य को मूलतः निरामिष भोजी ही बनाया गया। आश्चर्य तो इस बात का है कि अन्य किसी प्राणी ने अपने नैसर्गिक जीवन को न तो बदला न तोड़ा। पर, मनुष्य ने उसमें आमूल तोड़-फोड़ की उसने अपना भोजन और जीवन का क्रम बदल डाला। जीभ के क्षणिक स्वाद के लिए उसने अनेक भोले प्राणियों का वध किया। उनका भक्षण किया और उदर को श्मशानगृह बना दिया। विवेकहीन होकर वह करुणा-दया को भूलकर क्रूर बनकर हत्यायें करने लगा। अरे ! हिंसक भोजी पशु भी जब तक भूख नहीं लगती–शिकार नहीं करते। पर, इस मनुष्य ने निहत्थे, निर्दोष पशुओं को मारकर उसे भोज्य बनाया। पशु-पक्षियों की कत्ल आम बात हो गई। शास्त्रों में लिखा है कि माँसाहारी एक जीव का ही वध नहीं करता पर माँस में उत्पन्न अनन्त त्रस जीवों की भी हिंसा करता है। प्रवचनसार में इसीलिए श्रमण को युक्ताहारी कहा है। ऐसा ही उपदेश सागारधर्मामृत आदि ग्रंथों में है। "मद्य-माँस-मधु" का सर्वथा त्याग इसी जीवहिंसा के संदर्भ में कराया जाता है। तभी इनकी गणना अष्टमूलगुण के अन्तर्गत की गई है। प्रवचनसार में आचार्य कुंदकुद ने कहा–"पके हुए या कच्चे माँस के खंडों में उस माँस की जाति वाले निगोद जीवों का निरंतर जन्म होता है। जो जीव पक्की या कच्ची माँस की डली खाता है या स्पर्श करता है वह अनेक करोड़ जीवों का निश्चित रूप से घात करता है। इतना ही नहीं अंडा, कंदमूल आदि को अभक्ष्य इसीलिए माना है कि उससे जीव हिंसा निश्चित रूप से होती है। हिंसा एवं माँसाहार के दूषणों से शास्त्र भरे पड़े हैं। यहाँ उनकी भावना ही प्रस्तुत है।

इसी प्रकार भोजन के उपरांत शिकार के व्यसन ने भी इस मानव को हिंसा-पशुवध के लिए उकसाया है। शिकारी का विकृत मानसिक शौक निरपराध प्राणी की जान ले लेता है। काश ! शिकारी उस पशु-पक्षी की आँखों की करुणा-असहायता को देख पाता। शिकारी स्वभाव से क्रूर ही होता है। कुदरत के धन पशु- पक्षियों का वध करके आनंद प्राप्त करने वाले मानव को क्या कहें ? घर की दीवान खाने सजाने को उसने कितने मासूमों की जान लीं।

इसी प्रकार प्राकृतिक सौन्दर्य को स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन के बदले बाह्य प्रसाधनों से सजाने की धुन में सैंकड़ों पशुओं की निर्मम हत्यायें की गई। महँगे सेन्ट, लिपिस्टिक, स्प्रे आदि में इन्हीं पशुओं का रक्त झलकता है। जिस क्रूरता से उनकी हत्या की जाती है उसका बर्णन भी पढ़ने से आँखें छल-छला जाती हैं। चमड़े की मँहगी बनावट में जीवित पशुओं की चमड़ी उधेड़ दी जाती है। इस प्रकार जीभ की लोलुपता, शिकार का शौक और फैशन ने क्रूर हत्याओं के लिए मनुष्य को प्रेरित किया। इससे पशुओं की संख्या घटने लगी। अरे ! कुछ पशुओं की तो नस्लें ही अदृश्य होती जा रही हैं। इससे प्रकृति का संतुलन डगमगाया है और पर्यावरण की समस्या गंभीर हुई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिंसा की इस भावना से मनुष्य की मनोवृत्तियाँ दूषित हुईं। दया का तत्त्व ही अदृश्य हो गया। पशु-वध करते-करते उसकी क्रूरता इतनी बढ़ी कि वह मानव-हत्या करने में भी 'नहीं' हिचकिचाया। परस्पर प्रीत करने वाला मानव बड़े-बड़े युद्धों का जनक बना। आज विश्व का मानवतावादी संतुलन इसी हिंसात्मक युद्ध की परिस्थिति के कारण है।

पर्यावरण की असंतुलिता का दूसरा कारण बढ़ती हुई जनसंख्या है। यदि हमने जैनधर्म के महत्त्वपूर्ण अंग 'ब्रह्मचर्य' का 'अणुरूप' भी पालन किया होता तो इस परिस्थिति का निर्माण नहीं होता। पश्चिमी भौतिकवाद एवं काम विज्ञान की अधूरी समझ, हिंसात्मक भोजन ने मनुष्य की वासनायें भड़काईं। वह कामांध बन गया। परिणाम बड़ा विस्फोटक हुआ। आज यह जनसंख्या का विस्फोट बम विस्फोट से अधिक भयानक है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण मनुष्य को निवास, खेती, उद्योग के लिए अधिक भू-भाग की आवश्यकता पड़ी।

मनुष्य यह भूल गया कि वनस्पति आदि पंचास्तिकाय जीव भी प्रकृति के वैसे ही अंग हैं जैसा वह है। अपने रहने के लिए उसने जंगलों को काटना शुरू किया। जंगल सिमटते गये। जहाँ कभी घने जंगल थे–पशु-पक्षी थे–वहाँ आज खेत या मनुष्य के रहने के घर-नगर बस गये। जंगल सिकुड़ गये। इसी प्रकार ईंधन के लिए उसने आँखें बन्द करके वृक्षोच्छेदन किया। वह भूल गया कि हमारे कार्बनडाइ ऑक्साइड को पीकर वे हमें ऑक्सीजन देकर प्राणों में संचार भरते थे। वह भूल गया कि हमारे पानी के यही संवातक थे। भूस्खलन इनसे रुकता था। हरियाली, शुद्धता एवं सौन्दर्य के ये प्रतीक थे। बस जंगल कटे और आफत आई। आज देश में ही नहीं विश्व में पीने के पानी की समस्या है। आये दिन होने वाला भूस्खलन, भूकम्प, बाढ़ इन्हीं के परिणाम हैं। पानी खूब गहराई में उतर गया है। ऋतुओं का संतुलन बिगड़ गया है। यदि हमने वृक्ष काटने को पाप और दुख का कारण माना होता तो यह आत्मघाती कार्य हम कभी न करते।

खेती में हमने पेस्टीसाइड्स द्वारा उन जीवों की हत्या की जो फसल को थोड़ा खाकर अधिक बचाते थे। कीड़े तो मार दिये पर उनका विष नहीं मार सके। वैज्ञानिक परीक्षण से सिद्ध हुआ है कि बार-बार ऐसी दवायें मानव रक्त में जहरीलापन भर देती हैं। यही कारण है कि विश्व के समृद्ध या विकसित देशों ने इनका उत्पादन बंद कर दिया है–जबकि हम उसके उत्पादन को अपना गौरव मान रहे हैं। भय तो इस बात का है कि एक दिन इनके कारण भूमि की उर्वरकता ही नष्ट न हो जाये। तात्पर्य कि जंगलों की कटाई ने भूमि के संतुलन को बिगाड़ दिया और जहरीली खाद ने भूमि की उर्वरकता पर प्रहार किया।

बड़े-बड़े उद्योग धंधे भी प्रदूषण उत्पन्न कर पर्यावरण को विषाक्त बना रहे हैं। हम प्रौद्योगिकी के विकास के सुनहरे चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं पर यह भूल गये कि विद्युत उत्पादन, अणुरीएक्टर के रजकण, ईंधन के विविध प्रयोग (पेट्रोल-डीजल-केरोसीन) कितना प्रदूषण फैला रहे हैं। कारखानों का धुँआ आकाशीय वातावरण को प्रदूषित कर रहा है तो उनका गंदा पानी नदियों के जल को प्रदूषित बना चुका है। इससे असंख्य जलचर जीव जो पानी को फिल्टर करते थे–उनका विनाश हो रहा है। हमारी पवित्र नदियाँ, झीलें, सरोवर आज प्रदूषित हो गये हैं। गैस उत्पादक कारखाने तो हमारे पड़ौस में बसने वाली साक्षात् मौत ही है। भोपाल का गैस कांड या चार्नोबिल का अणुरिसाव हमारी शताब्दी की सबसे बड़ी त्रासदी है। सच तो यह है कि वर्तमान में फैल रहे रोगों का मूल यह प्रदूषित जल एवं हवा ही है। विकसित देश चालाकी से ऐसे मानवसंहारक कारखाने अपने यहाँ नहीं लगाते–वरन् उन अविकसित देशों में लगाते हैं जहाँ मानव संहार का मानों कोई मूल्य ही नहीं। फिर ऐहसान तो यह जताते हैं कि वे हमारी प्रगति के कर्णधार हैं। यदि ऐसे कारखाने फैलते गये तो यह प्रदूषित वातावरण ही इस सृष्टि के विनाश हेतु प्रलय सिद्ध होगा। जैनदृष्टि से इन तथ्यों पर विचार करें तो हम कह सकते हैं कि यदि अहिंसा और अपरिग्रह का सिद्धान्त लागू किया जाये तो मनुष्य पैसे कमाने और संग्रह की होड़ से बच सकता है। वह आवश्यक जीवनयापन की सामग्री की उपलब्धि तक अपने आपको सीमित कर देगा। फिर वह उन उत्पादनों द्वारा संसृति का विनाश नहीं होने देगा। धन की लालसा चाहे व्यक्ति की हो या देश की उसके कारण ही ये जहरीले धंधे किए जा रहे हैं। इसी प्रकार जैनदर्शन का सह अस्तित्त्व का सिद्धांत यदि समझा जाये, प्रत्येक प्राणी के साथ मैत्री का भाव उदय हो तो फिर हम ऐसा कोई कार्य नहीं करेगे जो जीवहिंसा एवं प्रकृति को विकृत करता हो। मनुष्य ने अपने स्वार्थ के कारण प्रकृति के वैज्ञानिक संतुलन जिसमें पदार्थ विज्ञान, रसायन विज्ञान एवं जीवविज्ञान का समावेश है उसके साथ भी खिलवाड़ किया। परिणाम स्वरूप 'ऑजोन' की परत भी आज छिद्रयुक्त बन रही है जो भीषण विनाश का संकेत है। वास्तव में थोड़ी सी दृश्य सुविधा के लिए हमने पृथ्वी के स्वरूप पर बलात्कार ही किया है। वैज्ञानिकों का स्पष्ट मत है कि यदि ऐसी ही मनमानी होती रही तो शताब्दी के अंत तक लाखों जीवों की प्रजातियाँ ही नष्ट हो जायेंगी। जिससे पर्यावरण में असंतुलन हो जायेगा।

आल्बर्ट स्वाइट्जर के शब्दों में–"मानव आज अपनी दूरदर्शिता खो बैठा है जिससे वह सृष्टि को विनाश की ओर ले जायेगा।" यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि विकास की आड़ में हम विनाश को आमंत्रित कर रहे हैं। यदि हम चाहते हैं कि इस विनाश को रोकें तो हमें प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करना होगा।

पर्यावरण की इस सुरक्षा या विनाश का आधार हमारी जीवन शैली से भी जुड़ा हुआ है। यदि हम जैन जीवन शैली अपनायें तो अवश्य इसकी सुरक्षा में एक कदम बढ़ाया जा सकता है। जैनों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिनचर्या उनके परिमाणव्रत, बारहव्रत बारहतप को जीवन में उतारा जाये तो अनेक विनाशकारी तत्त्वों से बचा जा सकना संभव है। जैन शास्त्रों में गृहस्थ एवं साधू की जो जीवन शैली वर्णित है उसमें किसी भी प्राणी, वनस्पति, जल, पृथ्वी, अग्निकायिक जीवों की विदारणा न हो इसका पूरा निर्देश है। आसक्ति से मुक्ति, इच्छाओं का शमन, प्राणीमात्र के प्रति करुणा उसके मूल में हैं। विचारों की स्वच्छता ऐसे ही भाव और भोजन से आती है जो रक्षण में सहायक तत्त्व होते हैं।

थोड़ा-सा और गहराई से विचार करें तो हमारा संबंध प्रकृति एवं उसके अंगों से कितना रहा है उसका प्रमाण है हमारे तीर्थंकरों के लांछन, उनके चैत्यवृक्ष। इनमें पशु-पक्षी एवं वृक्षों की महत्ता है। हिन्दू शास्त्रों में जो चौबीस अवतार की चर्चा है उममें भी जलचर, थलचर, नभचर पशु-पक्षियों का समावेश है। गाय को माता मानकर पूजा करना। पशुपालन की प्रथा क्या है? वट वृक्ष की पूजा या वसन्त में पुष्पों की पूजा क्या प्रकृति का सन्मान नहीं। देवताओं के वाहन पशु-पक्षी हमारे उनके साथ आत्मीय संबंधों का ही प्रतिविंव है। तात्पर्य कि पशु-पक्षियों और वनस्पति के साथ हमारा अभिन्न रिश्ता रहा है। कहा भी है–"यदि गमन या प्रवेश के समय सामने मुनिराज, घोड़ा, हाथी, गोबर, कलश या बैल दीख पड़े तो जिस कार्य के लिए जाते हों। वह सिद्ध हो जाता है। (हरिषेणवृहत्कथा-कोश स्व. पं. इन्द्रलाल शास्त्री के लेख प्राकृत विद्या से साभार)

हमारे यहाँ शगुनशास्त्र में भी पशुपक्षियों का महत्त्व सिद्ध है। एक ध्यानाकर्षण वाली बात यह भी है कि हमारे जितने तीर्थंकर, मुनि एवं सभी धर्मों के महान् तपस्वियों ने तपस्या के लिए पहाड़, गिरिकंदरा, नदी के किनारे जैसे प्राकृतिक स्थानों को ही चुना। प्रकृति की गोद में जो असीम सुख-शांति मिलती है, निर्दोष पशु-पक्षियों की जो मैत्री मिलती है वह अन्यत्र कहाँ? तीर्थंकर के समवसरण में प्रथम प्रातिहार्य ही अशोक वृक्ष है। गंधोधक वर्षा में पुष्पों की महत्ता है। ज्योतिषशास्त्र की १२ राशियों में भी पशु-पक्षी की महत्ता स्वीकृत है। इस देश की संस्कृति ने तो विषैले सर्प को भी दूध पिलाने में पुण्य माना है। तुलसी की पूजा की है और जल चढ़ाने की क्रिया द्वारा जल का महत्त्व एवं वृक्ष सिंचन को महत्ता प्रदान की है।

सम्राट अशोक या सिद्धराज-कुमारपाल के राज्यों में गुरुओं की प्रेरणा से जो अमारि घोषणा (हिंसा का पूर्ण निषेध) हुई थी उसमें हिंसा से बचने के साथ परोक्ष रूप से तो पर्यावरण की ही रक्षा का भाव था।

जैनदर्शन का जलगालन सिद्धांत, रात्रि भोजन का निषेध, अष्टमूल गुणों का स्वीकार इन्हीं भावनाओं की पुष्टि के प्रमाण हैं। कहा भी है "जैसा खाये अन्न वैसा उपजे मन। जैसा पीए पानी वैसी बोले वानी।"

जैनदर्शन मन-वचन-काय की एकाग्रता और संयम पर जोर देता है। 'मौन' पर उसने विशेष जोर दिया। सामायिक, ध्यान, योग में मौन की महत्ता है। वास्तव में जितना उत्तम चिंतन मौन में होता है उतना अन्यत्र नहीं। आज 'आवाज' का प्रदूषण भी कम खतरनाक नहीं है। निरंतर आवाजें, ध्वनियंत्र की चीखें, रेडियो-टेलीविजन के शोर ने मानव की चिंतन शक्ति खो दी है। उसके शुद्ध विचारों पर इनका इतना आक्रमण हुआ है कि वह अच्छा सोच ही नहीं पाता। इस प्रकार पूरे निबंध का निष्कर्ष यही है कि यदि हम हिंसा से बचें, पंचास्तिकायिक जीवों की रक्षा करना सीखें, भोजन का संयम रखते हुए जीवन शैली में योग्य परिवर्तन करें तो हम सृष्टि के मूल स्वरूप को बचा सकते हैं।

इसके उपाय स्वरूप हमें वायु, जल एवं ध्वनि के प्रदूषण को रोकना होगा।

वृक्षों की सुरक्षा करनी होगी। कटे वनों में पुनः वृक्षारोपण करना होगा। जिससे हवा में संतुलन हो। भूस्खलन रोके जा सकें। ऋतुओं को असंतुलित होने से बचाया जा सके। शुद्ध वायु की प्राप्ति हो। हिंसात्मक भोजन, शिकार एवं फैशन के लिए की जाने वाली हिंसा से बचना होगा।

कलकारखानों की गंदगी से जल को बचाना होगा। हवा में फैलती जहरीली गैस से बचना होगा। जैनदर्शन की दृष्टि को विश्व में प्रचारित करते हुए परस्पर ऐक्य। प्रेम एवं 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' की भावना के संदर्भ में सह-अस्तित्व एवं प्राणीमात्र के प्रति दया, ममता, प्रेम, आदर एवं मैत्री के भाव का विकास करना होगा। गीत की ये पंक्तियाँ सजीव करनी होंगी–

"तुम खुद जिओ जीने दो जमाने में सभी को,
अपने से कम न समझो सुख-दुख में किसी को।"

सर्वे भवन्तु सुखिनः के मूल मंत्र के साथ याद रखना होगा वह सिद्धांत–

जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सये।
जयं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पापं ण वज्झई।

यदि हम सामूहिक आत्महत्या से अपने आपको बचाना चाहते हैं तो हमे पर्यावरण की रक्षा पर पूरा सहिष्णुता पूर्वक ध्यान देना होगा।

पता :
डॉ. शेखरचन्द्र जैन
प्रधान सम्पादक "तीर्थंकरवाणी"
६, उमिया देवी सोसायटी
नं. २ अमराईबाडी, अहमदाबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org